ओ३म्

**‘ईश्वर-जीवात्मा विषयक यथार्थ ज्ञान के प्रदाता महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती को किशारोवस्था में मृत्यु से बचने के लिए उपाय करने के साथ ईश्वर व जीवात्मा के यर्थाथ स्वरूप के ज्ञान की खोज करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। उसी दिन से वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के साथ ईश्वर व जीवात्मा की खोज के मिशन पर लग गये थे। उन्होंने 21 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर ईश्वर व जीवावत्मा के सत्य स्वरूप का अनुसंधान किया और सफलता प्राप्त की। ऐसे अनेक विद्वान व योगी हुए हैं जिन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया है परन्तु महर्षि पतंजलि के अतिरिक्त किसी ने ईश्वर के सत्यस्वरूप व योग का इस प्रकार से प्रचार किया हो जिस प्रकार से महर्षि दयानन्द ने किया है, इसका दूसरा उदाहरण इतिहास में उपलब्ध में नहीं है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

महर्षि दयानन्द (1825-1883) के समय में ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान उपलब्ध नहीं था। विदेशी मतों में भी ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान नहीं है। भारत में सनातन वैदिक धर्म का रूप मध्यकाल व बाद में पौराणिक मत ने ले लिया था जहां 18 पुराणों के आधार पर ईश्वर व जीवात्मा के सम्बन्ध में अनेक मिथ्या विश्वास व मान्यतायें प्रचलित थीं। इनके अतिरिक्त बौद्ध व जैन मत तो ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। स्वामी शंकराचार्य जी ने अद्वैतमत का प्रचार किया। यह मत भी जीवात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। इनकी मान्यता है कि जीवात्मा कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं अपितु ईश्वर का ही अंश है। संसार वा सृष्टि के अस्तित्व की भी यह मत अवहेलना कर इसे अन्धकार में रस्सी को देखकर सांप के होने की भ्रान्ति की तरह एक भ्रान्ति ही स्वीकार करता आ रहा है और मानता है कि संसार का यथार्थ अस्तित्व है ही नहीं। ऐसी स्थिति में महर्षि दयानन्द ने प्रायः सारे देश का भ्रमण किया। सभी विद्वानों व महात्माओं, योगियों व ज्ञानियों की संगति की। उनसे ईश्वर, जीवात्मा व ईश्वर की प्राप्ति के उपाय आदि अनेक विषयों पर प्रश्नोत्तर किये। वह जहां-जहां भी गये, वहां के पुस्तकालयों में उपलब्ध धर्म विषयक साहित्य को लेकर उसका गहन अध्ययन किया। योग सीखा और समाधि को सिद्ध किया। इस पर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। इस प्रकार से होते-होते सन् 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम आ गया। इस संग्राम में स्वामीजी ने भूमिगत होकर कार्य किया। इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है परन्तु सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ उद्धारणों से यह अनुमान होता है कि उन्होंने इस स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

सन् 1860 में स्वामी दयानन्द मथुरा में वेदों के विद्वान प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से संस्कृत के आर्ष व्याकरण का अध्ययन करने आते हैं। स्वामी विरजानन्द संस्कृत देश में अकेले ऐसे गुरू वा आचार्य थे जो वैदिक आर्ष व्याकरण का अध्ययन अपने शिष्यों को कराते थे। उन्होंने अपनी शिक्षा, अध्ययन तथा ऊहा से संस्कृत के वैदिक आर्ष व्याकरण की पद्धति अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरूक्त पद्धति का अध्ययन ढ़ाई-तीन वर्ष में पूरा किया। उन्होंने जाना कि संसार में केवल चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ही संसार की उत्पत्ति व पालनकर्ता ईश्वर द्वारा सृष्टि के आरम्भ में प्रदत्त ज्ञान की संहितायें हैं जिनमें सभी सत्य विद्यायें उपलब्ध है। अध्ययन पूरा होने पर गुरू दक्षिणा के अवसर पर स्वामी दयानन्द ने गुरू विरजानन्द जी को उनकी प्रिय वस्तु लौंग भेट की। इस पर गुरूजी ने स्वामी दयानन्द की योग्यता व क्षमता को दृष्टिगत कर उन्हें कहा कि सारे संसार में आध्यात्मिक ज्ञान, सामाजिक व्यवस्थाओं व रीति-रिवाजों का सत्य स्वरूप विद्यमान नहीं है। इसके अभाव व मिथ्या विश्वासों के कारण लोग नानाविध दुःख पा रहे हैं। उनके कष्टों के निवारण का एक मात्र साधन है कि वेदों का प्रचार कर सत्य आध्यात्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की स्थापना की जाये और असत्य, अज्ञानपूर्ण, अन्धविश्वासों व पाखण्डों आदि का खण्डन कर उनका प्रचलन बन्द किया जाये। इस कार्य को आजीवन करने की गुरू विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द से इच्छा व्यक्त की। स्वामीजी लगभग 3 वर्षों तक स्वामी विरजानन्द जी के अन्तेवासी शिष्य रहे थे और कक्षा में अध्ययन के बाद भी गुरूजी से विचार विमर्श व शंका समाधान करते रहते थे। वह गुरूजी की भावनाओं को अच्छी तरह से समझते थे। उन्होंने गुंरूजी के प्रस्ताव को कुछ ही क्षणों में विचार कर अपनी स्वीकृति दी। हम अनुमान लगा सकते हैं कि गुरूजी की आत्मा इस स्वीकृति से अपने शिष्य पर कितनी प्रसन्न व सन्तुष्ट हुई होगी। हम अनुमान करते हैं कि उन्होंने अपने इस प्रिय व योग्य शिष्य को कोटिशः आशीर्वाद दिये थे।

अब महर्षि दयानन्द कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। वह आगरा आकर अपने वेद प्रचार की रूप-रेखा बनाते हैं। देश में विद्यमान अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड आदि का अध्ययन कर वेद, तर्क, युक्ति, सृष्टिक्रम के विरूद्ध सभी मत-मतान्तरों की मिथ्या मान्यताओं व विश्वासों का खण्डन करना आरम्भ करते हैं। खण्डन में जिन प्रमुख मान्यताओं को सम्मिलित किया गया उनमें मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष, अस्पर्शयता वा छुआछूत, मृतक श्राद्ध, जन्मना जाति व्यवस्था, बाल विवाह, बेमेल विवाह, सतीप्रथा आदि शामिल हैं। जिन बातों का उन्होंने समर्थन किया वह कुछ थी स्त्री व शूद्रों सहित सभी वर्णों को वेद आदि के अध्ययन का समान अधिकार, गुण कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्णव्यस्था, गुण-कर्म-स्वभाव की समानता पर आधारित विवाह, पूर्णतः निःशुल्क एवं अनिवार्य गुरूकुलीय शिक्षा जिसमें वेद एवं संस्कृत व्याकरण का अध्ययन अनिवार्यतः किया जाये आदि बाते हैं। उनके इस प्रकार प्रचार से सारे देश में जागृति उत्पन्न होनी आरम्भ हो गई। अज्ञानी व स्वार्थी लोगों ने उनका विरोध किया। स्वामी जी ने सभी को विचार-विमर्श व शास्त्रार्थ आदि की चुनौती दी। काशी में नवम्बर, सन् 1869 में पौराणिक पण्डितों से मूर्तिपूजा को वेद सम्मत सिद्ध करने के लिए उन्होंने लगभग 30 से अधिक पण्डितों से अकेले शास्त्रार्थ किया और उसमें विजयी हुए। मूर्ति पूजा वेदविहित या वेदानुकूल अथवा तर्क वा युक्ति प्रमाणयुक्त सिद्ध न की जा सकी। देश विदेश में इस शास्त्रार्थ की चर्चा हुई। प्रो. मैक्समूलर, लण्डन को जब इस शास्त्रार्थ का विवरण ज्ञात हुआ तो उन्होंने भी पत्र लिख कर महर्षि दयानन्द के पक्ष की विजय की पुष्टि की। इस प्रकार से महर्षि दयानन्द का प्रचार बढ़ता चला जा रहा था। बुद्धिजीवी वर्ग उनके विचारों व मान्यताओं की ओर आकर्षित हो रहा था। स्वामी दयानन्द जी आरम्भ में संस्कृत में ही उपदेश व वार्तालाप करते थे। कलकत्ता की एक सभा में जब उनके उपदेश का बंगला भाषा में अनुवादक महोदय ने सत्य के विपरीत अनुवाद कर लोगों को सुनाया तो वहां उपस्थिति ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन ने उन्हें सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को अपनायें तो उनके प्रचार का प्रभाव अधिक होगा। लोग सीधे उनकी भाषा व भावों को समझ सकेंगे और अनुवाद में होने वाली व जाने-अनजाने की जाने वाली अशुद्धियां भी नहीं होंगी। स्वामी जी को यह सुझाव पसन्द आया और उन्होंने तत्काल अपनी स्वीकृति प्रदान की। श्री केशवचन्द्र सेन जी ने दूसरा सुझाव उन्हें वस्त्र धारण करने का दिया। उस समय स्वामीजी मात्र कौपीन धारण करते थे। स्वामीजी को यह सुझाव भी हितकर व उपयोगी लगा और उन्होंने तत्काल इस प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लिया। इन दोनों ही सुझावों ने महर्षि दयानन्द को देश भर में पहले से अधिक ग्राह्य धार्मिक व सामाजिक नेता बना दिया।

जून, 1874 में ज्ञान की नगरी काशी में प्रचार के दौरान उनके एक भक्त राजा जयकृष्ण दास ने उनसे निवेदन किया कि महाराज आप जो उपदेश करते हैं उनका प्रभाव अस्थाई होता है। कुछ समय बात आपके विचार श्रोतागण भूल जाते हैं। अतः आप अपनी मान्यताओं व सिद्धान्तों पर आधारित एक ग्रन्थ लिख दें जिससे युग-युगान्तरों तक पास व दूर देशों के लोग उससे लाभान्वित होते रहेंगे। स्वामी दयानन्द को यह प्रस्ताव भी पसन्द आया और उसे स्वीकृति देकर वह इस कार्य में जुट गये और 12 जून, 1874 को आरम्भ कर लगभग साढे़ तीन महीनों में ही सत्यार्थ प्रकाश नाम से एक ग्रन्थ की रचना कर डाली। यह ग्रन्थ धार्मिक व सामाजिक आन्दोलनों के इतिहास में संससार भर में अपने प्रकार का अपूर्व ग्रन्थ सिद्ध हुआ। इस ग्रन्थ का संसार के सभी मतों के ग्रन्थों पर व्यापक प्रभाव हुआ। इसके प्रभाव से चिन्तित प्रायः सभी मतों ने अपनी मान्यताओं को तर्क व युक्ति पर स्थापित करने की कोशिश की। यह बात अलग है कि इस प्रयास में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि असत्य मान्यताओं को तर्क व युक्ति के आधार पर सिद्ध करना सम्भव नहीं होता। इसी क्रम में सन् 1875 में महर्षि दयानन्द मुम्बई में प्रचार कर रहे थे। वहां लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की वेदों के विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए एक ऐसे संगठन की स्थापना होनी चाहिये जिससे कि स्थानीय व देश भर में प्रभावशाली रूप से नियमित प्रचार-प्रसार किया जा सके। स्वामी जी ने इस प्रस्ताव पर भी संजीदगी से विचार किया और इस शंका के साथ स्वीकार किया कि यदि नियमों के पालन व आचरण में तालमेल नहीं होगा तो प्रचार के स्थान पर हानि भी हो सकती है। स्वामीजी ने विचार कर इस नये संगठन व वेद प्रचार आन्दोलन का नाम ‘आर्य समाज’रखा। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ गुण व आचरण सम्पन्न व्यक्ति होता है। इस प्रकार से आर्य समाज का अर्थ हुआ कि श्रेष्ठ गुणों व आचरणों वाले मनुष्यों का संगठन अर्थात् आर्य समाज। 10 अप्रैल सन् 1875 को मुम्बई के गिरगांव क्षेत्र के अन्तर्गत काकड़वाड़ी स्थान में प्रथम आर्य समाज की स्थापना हुई। भारत के इतिहास में 10 अप्रैल सन् 1875 का दिन विशेष महत्व रखता है। यह दिन भारतवासियों को आत्म-गौरव दिलाने वाला दिन था। इसने साबित किया कि वैदिक धर्म ही संसार का सबसे प्राचीनतम्, ज्ञान-विज्ञान सम्मत, ईश्वर प्रदत्त, मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्रदान कराने वाला एक मात्र धर्म है। इसका एक महत्व इस कारण भी है कि इसकी स्थापना से पूर्व हिन्दुओं को जोर-जबरदस्ती व प्रलोभन आदि से धर्मान्तरित कर मुसलमान व ईसाई बनाया जाता था। अब वह बन्द प्रायः हो गया और वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों के महत्व के कारण अन्य मतों के लोग स्वेच्छया वैदिक धर्म को स्वीकार करने लगे।

समय-समय पर स्वामी दयानन्द जिस बात को आर्य समाज व देश के हित के लिए आवश्यक समझते थे, उसे पूरा करते थे। उनके समय में वेद लुप्त हो चुके थे। भारत में संस्कृत आदि किसी भाषा में वेदों का प्रकाशन भी अब तक नहीं हुआ था। वेदों के मन्त्रों का सत्य व यथार्थ भाष्य, अनुवाद व टीका भी उपलब्थ्ध नहीं थी। स्वामी दयानन्द ने वेदों के महत्व को समझा। वेदों की लुप्त संहिताओं को ढूंढा व उन्हें प्राप्त कर वेद भाष्य करना आरम्भ कर दिया। ऋग्वेद के संस्कृत व हिन्दी में भाष्य लिखना आरम्भ कर सुझाव मिलने पर साथ-साथ उन्होंने यजुर्वेद का भाष्य भी आरम्भ कर दिया। यजुर्वेद का भाष्य पहले समाप्त हो गया। ऋग्वेद मन्त्र संख्या में अधिक होने के कारण चलता रहा। अक्तूबर, 1883 में विष दिए जाने से मृत्यु होने के समय तक वह 7 वें मण्डल के 52 वें सूक्त का भाष्य कर रहे थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके अनेक शिष्यों ने अवशिष्ट वेद भाष्य को पूरा ही नहीं किया अपितु कई शिष्यों ने स्वतन्त्र रूप से चारों वेदों पर भाषायें व टीकायें लिखीं। इस प्रकार से वेदों का पुनरूद्धार करने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को है। देश में प्रचार करने के साथ उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरूणानिधि, संस्कृत-वाक्य-प्रबोध सहित अनेकानेक सैद्धान्तिक ग्रन्थ व लघु पुस्तकें लिखीं। उनके प्रचार का परिणाम यह हुआ कि अन्य मतों के प्रचारकों ने आर्य समाज की चुनाती को स्वीकार नहीं किया। आर्य समाज की चुनौती थी कि वेदों की मान्यतायें ईश्वर प्रदत्त हैं और सर्वांश में सत्य हैं। चुनौती स्वीकार न करने का निहितार्थ पाठक स्वयं जान सकते हैं। महर्षि दयानन्द के वैदिक धर्म के प्रचार के कारण देश से अन्धविश्वास, अज्ञान व कुरीतियों आदि में कमी आई। विद्या का प्रचार व प्रसार हुआ। गुरूकुलों की स्थापना से शताधिक वैदिक विद्वान तैयार हुए। स्वयंवर वा प्रेम विवाह में वृद्धि हुई और आज यह तेजी से बढ़ती ही जा रही है। मूर्ति-पूजा पर लोगों को सन्देह होने लगा। लाखों लोग मूर्ति पूजा करना छोड़ चुके हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध हो चुका है। फलित ज्योतिष पर भी समाज का बड़ा वर्ग विश्वास नहीं रखता। अवतारवाद में लोगों के विश्वासों में भी कमी आई है। अब कोई पौराणिक विद्वान आर्य समाज के विद्वानों से मूर्ति पूजा, अवतार वाद व फलित ज्योतिष आदि पर शास्त्रार्थ करने के लिए राजी नहीं है। योग व योग पद्धति से उपासना में वृद्धि हुई, जन्मना जाति व्यवस्था भी कमजोर व शिथिल हुई जिसके कुछ दशकों में पूरी तरह से समाप्त हो जाने की सम्भावना है। आर्य समाज ने समाजोत्थान के क्षेत्र में भी सफल क्रान्ति की है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द विगत 5,000 वर्षो में ऐसे पहले धार्मिक व सामाजिक नेता हुए हैं जिन्होंने ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप की स्थापना की। ईश्वर की प्राप्ति का सत्य मार्ग महर्षि दयानन्द ने संसार के लोगों को बताया। यहां यह बताना भी समीचीन है कि सभी मार्गों व किसी एक वेदेतर मार्ग पर चलकर ईश्वर व जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। हमारा अनुभव है कि ईश्वर व जीवन के लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने का केवल और केवल एक ही मार्ग है और वह वेदों का दिखाया हुआ मार्ग है जिसका उद्घोष महर्षि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में उपदेशों व अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में किया है। हम संसार के सभी बुद्धिजीवियों को महर्षि दयानन्द का साहित्य पढ़कर अपने जीवन के उद्देश्य व उसको प्राप्त करने की पद्धति को जानने के लिए निष्पक्ष भाव से उसका अनुशीलन करने का अनुरोध करते हैं। नान्यः नन्था विद्यते अयनाय। अन्य दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इन्हीं शब्दों के साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**